International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 318-322

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 318-322
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-07-2020
Accepted: 21-08-2020

डॉ० रूपेन्द्र कुमार
सहायक आचार्यए श्री साहब सिंह महाविद्यालय (सम्बद्ध) डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ० रूपेन्द्र कुमार
सहायक आचार्यए श्री साहब सिंह महाविद्यालय (सम्बद्ध) डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

वेदार्थ का यास्कीय मार्ग

रूपेन्द्र कुमार

प्रस्तावना

वेद और उसके अर्थ को हृदयबम करने के लिए प्राचीन काल से ही निरुक्त की उपयोगिता स्वीकार की जाती रही है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में आचार्य यास्क से विलक्षण व्यक्तित्व वाला अन्य कोई साहित्यकार द्रष्टिगोचर नहीं होता आचार्य यास्क निरुक्त प्रकिया के मर्मज्ञ माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित निघण्टु वाङमय में विष्व का सबसे पहला कोष ग्रन्थ है । जो पाँच अध्यायों में विभक्त है इसके प्रथम तीन अध्यायों में एकार्थक सरल शब्द निवद्ध हैं । चौथे अध्याय में अनेकार्थवाची क्लिष्ट शब्द तीन खण्ड़ों में निवद्ध हैं । पाँचवे अध्याय में देवताओं से सम्बद्ध शब्दों को रखा गया है ।
आचार्य यास्क ने प्रथम तीन अध्यायों को निरुक्त (1/20) में नैघण्टुक काण्ड के अन्तर्गत माना है जबकि चौथे अध्याय को निरुक्तत (4/1) में नैगम या ऐकपदिक काण्ड कहा है इसके अतिरिक्त पाँचवे अध्याय को निरुक्त (1/20) में दैवत काण्ड नाम दिया है ।

प्रथम अध्याय – यह सत्रह खण्ड़ों में विभक्त है जिसमें पृथ्वी, दिषा, अन्तरिक्ष ,मेघ, रष्मि ,जल नदी आदि । भौतिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं एवम् उनसे सम्बद्ध कि्याओं के वाचक (4/5) पर्याय शब्द संइलित हैं ।

द्वितीय अध्याय – यह अध्याय 22 खण्ड़ों में विभक्त है । जिसमें मनुष्य एवम् उसके अबों तथा उसके उपयोग की वस्तुओं उसके कर्म और विविध कि्याओं से सम्बद्ध 516 पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं ।

तृतीय अध्याय – इस अध्याय में 30 खण्ड हैं इन तीनों अध्यायों अर्थात नैघण्टुक काण्ड में कुल 1341 शब्द सइलित हैं ।

चतुर्थ अध्याय – इस अध्याय में व्युत्पत्ति की दृष्टि से कठिन (अनवगतसंस्कार) 279 शब्दों को तीन खण्ड़ों में सइलित किया गया है यह सइलन किस आधार पर है यह स्पष्ट नहीं है ।

पं०चम अध्याय – इसमें कुल छः खण्डों में 151 नाम सइकलित हैं । प्रथम तीन खण्डों में पृथ्वीस्थानीय देवताओं के 52 नाम हैं । चौथे खण्ड में अन्तरिक्ष के देवताओं के 32 नाम तथा पाँचवे खण्ड में अन्तरिक्ष के ही छोटे – मोटे देवताओं और विभिन्न स्त्री देवताओं के 36 नाम हैं । छठवें खण्ड में द्युलोक के देवताओं के 31 नाम सइलित हैं । निघण्टु में मुख्य रूप से नाम पदों का और आख्यात पदों का ही समाम्नान किया गया है ।
नैघण्टुक काण्ड में पठित 1341 शब्दों में से आख्यात पर्याय केवल 313 हैं । निपात शब्द भी कुछ ही हैं । जैसे– 1–अर्वाके 2– अहृाय 3– आ 4– आकीम 5– आके 6– आरे 7– आशु 8–आसत 9– आहिकम 10– इत्था 11– इदा 12– इदानीम 13– इव 14– उपाके 15– चितं 16– तथा 17– तिर 18– न 19– नकिः 20– नकीम 21– नु 22– नुकम् 23–पराके 24– पराचै 25– वट 26– मकि 27–मक्षु 28– यथा 29– शु 30–श्रत 31– सत्रा 32– सुंकम 33– हिरुक् इत्यादि
उपसर्ग तो नैघण्टुक– काण्ड में केवल एक 'अभि' ही है[1] शेष 994 नाम पद हैं ।चौथे अध्याय में– 1– इत्था 2– ईय 3– नूच 4– नूचित 5– सचा 6– सीय इत्यादि कुछ निपात और गतिसंज्ञक 'अच्छ' शब्द तथा 'परि' उपसर्ग हैं । जहाँ आदि कुछ आख्यात पद भी हैं । परन्तु अधिक तो नामपद ही हैं ।पाँचवे अध्याय में तो सभी नाम पद ही हैं।

निघण्टु और निरुक्त का सम्बन्ध– निघण्टु तथा निरुक्त का अविनाभाव सम्बन्ध है । निरुक्त के बिना अकेले निघण्टु की तथा निघण्टु के बिना अकेले निरुक्त की उपयोगिता में बहुत कमी आ जाती है । आचार्य सायण अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में निघण्टु को निरुक्त नाम से ही पुकारते हैं शइर वेदान्त दर्षन के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थान भेद नामक ग्रन्थ में पाँच अध्यायों में निवद्ध निघण्टु नामक ग्रन्थ को यास्क द्वारा विरचित बताया है [2]। परन्तु उन्होंने इसके लिए कोई युक्ति नहीं दी है ।ऋग्वेदसंहिता के सायण से भी प्राचीन भाष्यकार दाक्षिणात्य विद्वान वेंइटमाधव ने भी निघण्टु को यास्ककृत माना है [3]। इन्होंने भी कोई युक्ति नहीं दी है ।इनके लेखों से विदित होता है कि उस समय इस बारे में कोई मतभेद नहीं था ।

निरुक्त का विषय विवेचन– यास्क के निरुक्त की प्रधान उपयोगिता निर्वचन के द्वारा वेदार्थ ज्ञान कराना है [4] परन्तु वैदिक शब्दों का अर्थ निर्धारण किये विना यह कार्य नहीं हो सकता । अतः वैदिक शब्दों का अर्थ निर्धारण करना निर्वचन का प्रधान लक्ष्य है इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए यास्क ने सर्वप्रथम तीन काण्डों तथा पाँच अध्यायों वाले निघण्टु ग्रन्थ का प्रणयन किया है [5]।
इस विवरण से सुस्पष्ट है कि प्रकृत निरुक्त ग्रन्थ के दो उपेय विषय तथा एक उपाय विषय है । जो निम्न हैं– 1– मन्त्रार्थक 2– देवविद्या 3– निर्वचन
आर्चाय यास्क किसी शब्द का निर्वचन करते समय उसके अर्थ के विभिन्न पहलुओं को दृष्टि में रखते हैं ।
संस्कृत में एक से अधिक शब्दों के अर्थ का निर्वचन आचार्य यास्क ने अलग–अलग किया है। जैसे – कीकट, विहार के एक भाग मगध का प्राचीन नाम है । कीकट देशवासी अनार्यो की श्रद्धा आर्यो की धार्मिक कृियाओं में नहीं थी इस भावना की दृष्टि में रखते हुए यास्क ने इस शब्द का दूसरा निर्वचन दिया है । कि कृियाभिरिति प्रेत्सा वा (6/32) अपत्य (3/1) तथा कच्छ (4/18) शब्दों के दो – दो निर्वचन भी इसी प्रवृत्ति के निदर्षन हैं ।

आचार्य यास्क ने ऐकपदिक काण्ड के शब्दों का निर्वचन किया है ।

तत्वं पर्याय शब्देन व्युत्पतिश्च दृयोरपि ।
निगमों , निर्णयश्चेति व्याख्येयं नैगमे पदे ।।

निरुक्त की उपयोगिता – बुद्धि को तीक्ष्ण करने के लिए दर्षनषास्त्रों में जो स्थान न्यायदर्षन का है । वही स्थान भाषाषास्त्र में निरुक्त का है निरुक्त ग्रन्थ के प्रतिपादक आचार्य यास्क सर्वाबीण विचार करने वाले नैरुक्त आचार्य माने जाते हैं । वैदिक मन्त्रों में यथार्थ और वाक्यार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए निरुक्त बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है [6]।

ग. निर्वचन के सिद्धान्त उपाय और शैली

1. निर्वचन का अर्थ एवं परिभाषा – निर्वचन उस प्रकिया का नाम है जिसमें परोक्षवृत्ति या अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों से छुपे हुए अर्थों को निकाल करके प्रदर्शित किया जाता है [7]। तथा इसमें ध्वन्यात्मकता के आधार पर इतिहास का आश्रय लेकर अर्थ के स्वरूप का विवेचन किया जाता है।

निर्वचन के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए आचार्य दुर्ग कहते हैं कि आंषिक या पूर्णतया व्युत्पत्ति की द्रष्टि से दुरूह समझे जाने वाले शब्द में निगूहित अर्थ को प्रकाषित करने के लिए उसके अक्षरों को विगृहीत करते हुए कृिया को पूर्णतया अभिव्यक्ति देना निर्वचन कहलाता है ।

आचार्य यास्क निर्वचनीय शब्दों के निम्नलिखित तीन प्रकार मानते हैं ।
क. अर्थानुकूल (समर्थ) व्याकरण की प्रकिृया प्रत्यक्ष शब्द (द्र0 यास्क के वक्तव्य के अनुवाद का अनुच्छेद)
ख. परोक्षवृत्ति शब्द –: (द्र0 यास्क अनु0 2/)
ग. अतिपरोक्ष वृत्ति शब्द –: (द्र0 अनु0 3/)

इन तीनों ही प्रकार के शब्दों के निर्वचन आचार्य यास्क ने विशेष रूप से ध्यान में रखकर किये हैं

समस्त पदों की निर्वचन शैली

आचार्य यास्क ने समासयुक्त पदों की निर्वचन शैली का प्रतिपादन किया है । सर्वप्रथम राजपुरूषः इस वाक्य का समासार्थ आचार्य यास्क बतलाते हैं कि 'राज्ञः पुरूषः' [8] षष्ठी विभक्ति युक्त राज्ञः पद कहने से सम्पूर्ण स्व का वोध होता है । तथा पुरूष शब्द स्वामी अर्थ की प्रतीति कराता है । आचार्य दुर्ग 'राजपुरूषः' पद के समासार्थ को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं । कि राजपुरूषः यह समस्तपद होने पर राजा शब्द पुरूष को अन्य स्वामियों से तथा पुरूष शब्द राजा को अपने अधिकार वाली सम्पत्ति से प्रथक करके अपने साथ जोड़ लेता है । 'राजपुरूषम् आनीयताम् यह कहने पर न राजा को लाया जाता है । और न पुरूष को वल्कि राजा के अधीन काम करने वाले पुरूष को लाया जाता है । यही समास का अर्थ है ।
समासार्थ पद कहने के उपरान्त आचार्य यास्क पद का निर्वचन करते हैं । राजा राजते [9] इस दीप्त्यर्थक 'राज' धातु से राजा पद निष्पन्न होता है । राजा पद का निर्वचन करते हुए आचार्य दुर्ग कहते हैं कि पाँचों लोकपालों के अंष से जो दीप्ति होता है । वह राजा है [10]। स्कन्दस्वामी ने राजा पद को राजृ दीप्तौ धातु से व्युत्पन्न माना है । [11] लेकिन निघण्टु में उक्त 'राजृ' धातु ऐष्वर्यार्थक मानी गयी है [12]। महाकवि कालिदास 'राजा' पद को 'रञज' धातु से निष्पन्न मानते है [13]। उनके अनुसार प्रक्रति का रञजन के कारण वह राजा कहलाता है । ऋग्वेद के अनुसार राजबाड़े शासन का संचालन करने वाली राज् धातु से राजा पद व्युत्पन्न हुआ है [14]।

घ. यास्क प्रदर्षित प०चविधि मन्त्र व्याख्यान

देववाणी संस्कृत के मूर्धन्य मन्त्र व्याख्याकार आचार्य यास्क को माना जाता है इन्होंने मन्त्रों की व्याख्यायें बड़े ही पाण्डित्य पूर्ण ठंग से की हैं । इसके साथ–2 मन्त्रार्थ करने की योग्यता एवं शर्त पर भी बल दिया है ।

1. मन्त्रार्थ करने की आवष्यक शर्त – मन्त्रार्थ करने के प्रति सचेत करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं। कि श्रुति और तर्क की कसौटी पर मन्त्रार्थ– चिन्तन खरा उतरा हुआ होना चाहिए[15]।

2. मन्त्रार्थ करने की योग्यता – मन्त्रार्थ करने की योग्यता विषय का प्रतिपादन करते हुये आचार्य यास्क कहते हैं । कि जो ऋषि और तपस्वी नहीं है। उसे मन्त्रार्थ का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है ।

इस प्रकार मन्त्रार्थ करने की सामर्थ तीन प्रकार के व्यक्तियों में होती है ।
क. प्रथम ऋषि – जो ऋषि है वह मन्त्रार्थ दृष्टा होने के कारण मन्त्रार्थ करने में सक्षम है ।

ख. द्वितीय तपस्वी – जो ऋषि नहीं अपितु तपस्वी है वह अपनी तपस्या के वल से मन्त्रार्थ का प्रत्यक्ष कर सकता है ।

ग. तृतीय भूयोविद – जो न तो ऋषि है । और न तपस्वी वल्कि भूयोविद– (अनेकानेक शास्त्रों तथा लोकव्यवहारों का ज्ञाता) है । वह भी मन्त्रार्थ कर सकता है।

3. मन्त्र व्याख्या शैली– आचार्य यास्क के निरुक्तषास्त्र का अध्ययन करने से ज्ञातव्य हैं कि मन्त्र व्याख्या शैली तीन प्रकार की है ।

क. अधियज्ञपरक – यह शैली याज्ञिकों की मानी गयी है ।
ख. अधिदैवपरक – यह द्वितीय शैली नैरुक्तों को समर्पित है।
ग. अध्यात्मपरक [16] & अन्तिम तृतीय शैली आत्मवेत्ताओं की है ।

ऐतिहासिक पक्ष में आचार्य यास्क की मन्त्रार्थ दृष्टि– आचार्य यास्क ऐतिहासिक पक्ष को एक भिन्न मन्त्रार्थ शैली के रूप में मान्यता प्रदान करते है। आचार्य यास्क इन्द्र और वृत्र के युद्ध के प्रसब को स्पष्ट करते हुये कहते है– 'तस्कोवृत्रः मेघ इति नैरुक्ताः । त्वाष्ट्रः असुर इत्यैतिहासिका [16] वृत्र के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यास्क कहते हैं। कि नैरुक्त पक्ष के अनुसार 'वृत' का अर्थ 'मेघ' है परन्तु ऐतिहासिक – पक्ष के अनुसार यह एक त्वाष्ट्र नाम का असुर है। नैरुक्त पक्ष का समर्थन करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं। कि यह इन्द्र और वृत्र का युद्ध कुछ नहीं केवल उदक और विद्युत के मिलन से उत्पन्न बाला बर्षकर्म है, अर्थात इन्द्र का कोई शत्रु नहीं है [18]। आचार्य दुर्ग इस कथन के समर्थन में निम्न मन्त्र प्रस्तुत करते हैं–
''मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुनद्यि शत्रु ननु पुरा विवित्से'' [19]। इस मन्त्र में ऋषि ने इन्द्र के युद्धों को माया नाम से अभिहित किया है। तथा यह कहा है कि इन्द्र का न तो कोई शत्रु है और न पहले कभी हुआ था। इसके अतिरिक्त इतिहास मानने वाले पक्ष के खण्डन में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।
क. महाभारत के उपाख्यान के अनुसार देवापि तथा शन्तुन के पिता का नाम प्रतीप है। [20] जबकि वेद में ऋष्टिषेण बताया गया है ।

ख. राजा प्रतीप की दो नहीं प्रत्युत तीन सन्तान थी देवपि, शन्तुन तथा वाह्यिक [21]

ग. इस सम्बन्ध में तीसरा और महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जा सकता है कि इस तथ्य को सभी इतिहास वेत्ता स्वीकार करते हैं। कि ऋग्वेद का रचना काल महाभारत बहुत प्राचीन है । महाभारत के एक अंष गीता में स्पष्ट रूप से अनेकषः वेद के नामों का उल्लेख किया गया है [22]।
आचार्य यास्क ने 'आर्ष्टिषेण' पद का निर्वचन निम्नवत किया है– ऋष्टिषेणस्य पुत्रः। वर्षा कराने के लिए माध्यमिक देवता जिस स्वरूप को धारण करता है। उसका नाम ऋष्टिषेण है। आचार्य यास्क 'देवापि' शब्द का 'देवानामाप्त्या' निर्वचन करते हैं [23]। इसका आशय यह ग्रहण किया जा सकता है कि जिसकी देवताओं तक पहुँच है । वह 'देवापि' है । ऋग्वेद में अग्नि को देवताओं का दूत तथा हवि ले जाने वाला माना गया है [24]

यास्ककृत मन्त्र व्याख्यान
संस्कृत वाणी की धारा को सतत प्रवाहित करने वाले मूर्धन्य विद्वान आचार्य यास्क का नाम बड़े श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने अनेक मन्त्रों के व्याख्यान भी किये हैं जो निन्नवत हैं।

'यत्वा देव प्रपिवन्ति ततत आ प्यायसे पुनः। वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः [25]।
उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या आचार्य यास्क निम्न प्रकार करते हैं– हे देव–: जो तुमको ऋत्विक आदि पीते हैं, इससे तुम पुनः वृद्धि को प्राप्त करते हो, यह व्याख्या नाराशसों के अभिप्राय से है । मन्त्रदृष्टा ऋषि वायु को इस सोम की रक्षा करने वाला कहता है । साहचर्य और रसहरण कम से वायु सोम की रक्षा करता है । औषधिरूप तथा चन्द्ररूप सोम दोनों बर्ष की आकृति हैं । क्योंकि दोनों सोम अपने रूपों से संवत्सरों का निर्माण करते हैं । [26] यदि कहीं इस प्रकार की कोई बात दिखाई देती है कि जिससे यास्क के कथन का स्वरूप स्पष्ट न हो पा रहा हो जैसे – 'वायुः सोमस्य रक्षिता' [27] के प्रसब में यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि वायु किस प्रकार सोम की रक्षा करता है ।
उपर्युक्त कथन को दुर्ग यह कहकर स्पष्ट करते हैं कि वायव्य पात्रों में रखे जाने पर सोम विकृत नहीं होता [28] इस प्रकार आवश्यक होने पर दुर्ग ने अपनी विद्वता तथा उर्वरा प्रतिभा का समुचित उपयोग करके संभावित सन्देहो को युक्ति युक्त समाधान किया है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सर्वत्र यास्क को दुर्ग ने समीचीन रूप में ही समझा है ।

उदाहरणार्थ – (क) वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विष्वस्मादिन्द्र उत्तर। [29] इस मन्त्र का अर्थ है– रेवति = हे धनवति। वृषाकपायि = सूर्य की पत्नी सुपुत्रे = मध्यमस्थानी इन्द्र के साथ रसहरण तथा स्थान की समानता होने से सुस्नुषे = माध्यमिका वाक् अर्थात् इन्द्राणी, ते = तेरे, उक्षण = स्वयं से उत्पन्न हुये इन माध्यमिक अवश्याय समुदायों को इन्द्रघसत्व = इन्द्र अर्थात् आदित्य भक्षण करें क्योंकि वही उदित होता हुआ इन अवष्याय कणों को पीता है । हे वृषाकपायि तू प्रियम = इष्ट, काचित्करम् = सुखकारक, हवि, उदक या अवष्यायरूप हवि, विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः = सवसे उत्कृष्ट इन्द्र के लिए तैयार करो [30]।
1. यास्क ने मध्यमेन [31] शब्द का प्रयोग किया है । जिससें यास्क का यह आशय प्रतीत होता है। कि बृषाकपायि का इन्द्र अभिधान वाला वायुरूप पुत्र है। यह कहा जा सकता है।

2. मन्त्र में आये 'सुस्नुषे' पद का अर्थ यास्क ने ' माध्यमिका वाक माना है [32]। यहाँ दुर्ग कहते है। कि वृषाकपायि की पुत्रवधू माध्यमिका वाक है। इसके साथ 'वृषाकपायि– के मध्यस्थानी पुत्र का मिथुन सामान्य है [33]। इससे सिद्ध होता है कि बृषाकपायि का पुत्र तथा उसकी पुत्रवधू दोनों मध्यस्थानी हैं और जब ये मध्यस्थानी हैं तब मध्यस्थानी इन्द्र का अर्थ आदित्य नहीं किया जा सकता और न उसे रसहरण कर्म से सम्वधित कर सकते है। यहाँ यास्क के अनुसार आदित्य इन्द्र मध्यस्थानी नहीं है ।
आचार्य शाकपूणि के मत की दुर्गकृित व्याख्या को नैरुक्तपक्ष की दृष्टि से सबत नहीं कहा जा सकता परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है लेकिन निम्न दृष्टि से देखने पर वह नैरुक्त पक्ष के अनुरूप घटित हो जाता है। 'त्रेधा निदधे पद्म 'पृथिव्यामन्तरिक्षेरिवीति शाकपूणिः [34] इसका अर्थ यह है । कि सूर्य उदित होता अपने पैर तीन स्थानों पर रखता है ।
सर्वप्रथम द्युलोक में तत्पश्चाद् अन्तरिक्ष में उसके बाद पृथ्वीलोक पर । यह पृकृिया इसलिए उपयुक्त है क्योंकि आदित्य सर्वप्रथम अश्विन रूप को धारण करके द्युलोक के अन्धकार का नाष करता है। ततपश्चात आदित्य रश्मियाँ अन्तरिक्षलोक के तमस को नष्ट करती हैं और उसके अनन्तर आदित्य अपने व्यापनषील तृतीय पद को पृथ्वी पर रखता है अर्थात अन्तरिक्ष लोक के पष्चात रष्मियों का तृतीय गन्तव्य स्थान पृथ्वीलोक ही है। यहाँ पहुँचकर वे इसलोक के अन्धकार का नाष करती हैं आचार्य यास्क के अनुसार जो अपनी रष्मियों से लोक को व्याप्त कर लेता है वह विष्णु है।

यास्क के अनुसार निम्न मन्त्र 'पृथ्वी' पद के द्युलोक का उदाहरण है–
'यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्याम वस्यामुत स्थः।
तः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य।। [35]

इन्द्राग्नी = हे इन्द्राग्नि देवताओ। यत = जो वृषणो = सुख की वर्षा करने वाले तुम दोनों परमस्याम् = उत्तमस्थानी, पृथिव्याम् = द्युलोक में, मध्यमस्याम = मध्यम पृथ्वी अर्थात अन्तरिक्षलोक में उत = और अवमस्याम् = भूलोक में , स्थः = विद्यमान हो तब भी अतः = वहाँ से, सुतस्य सोमस्य = अभिषुत सोम का, पिबतम् = पान करने के लिये, पर्यातम् = आओ। [36]

उपर्युक्त मन्त्र में सूक्त देवता इन्द्राग्नी है। इन्द्र मध्यस्थानी देवता है और अग्नि पृथिवीस्थानी और मध्यस्थानी । लेकिन इस सूक्त में 'अग्नि' पार्थिव देवता है 'समिद्धेष्वग्निष्वानजाना [37] इस मन्त्र में समिद्ध अर्थात् प्रदीप्त अग्नि का वर्णन किया गया है। जो स्पष्ट रूप से पार्थिव होने का संइेत देता है।

यदि पृथिवी पद मध्यम लोक तथा भूलोक के सन्दर्भ में प्रस्तुत हुआ है ऐसा माना जाय तो तदनुसार मन्त्रार्थ निम्नप्रकार होगा–

यत – जो, इन्द्राग्नी = वायु तथा अग्नि पृथिव्याम = प्रथ्वी के परमस्याम् = उत्कृष्ट स्थानों पर स्थित है, मध्यमस्याम् = मध्यमस्थानी पर स्थित होते है तथा अवमस्याम् = निकृष्ट स्थानों पर स्थः = स्थित हैं या विचरण करने वाले हैं और जो, वृषणौ = सुख की वर्षा करने वाले जो इन्द्राग्नी देवता उच्चमध्य तथा निम्न स्थानों पर स्थित है, वे सुतस्य = अभिषुत सोमम् = सोम का , पिबतम = पान करने के लिये इस यज्ञवेदी पर पर्यातम् = चारों ओर से आयें

इसके अतिरिक्त आचार्य यास्क एक अन्य मन्त्र का व्याख्यान इस प्रकार करते हैं 'परेयिवांस प्रवतो महीरनु वहुभ्यः मन्त्र का व्याख्यान इस प्रकार करते है। वैवस्वतं सबमनं जनानां ममं राजानं हविषा दुवस्य ।। [38]

इस मन्त्र में 'प्रवत' पद पठित है उसकी समानता से यास्क 'उद्धतः तथा 'निवत' पद का अध्याहार करते हैं–

प्रवतः = मनुष्य उद्धत = देवगण तथा निवतः = पशुपक्षी आदिम्हीः = नाना प्रकार के पापात्मा और पुण्यात्मा प्राणियों के लिए

पन्थामनुपस्पषानम् = अमुक ज्वर इत्यिादि रूपों के द्वारा बाँधकर ले जाऊँगा इस प्रकार कर्म करने वाले, वैवस्वतम् = विवस्वान के पुत्र , सबमनं जनानाम = कृतकर्म के अनुसार प्राणों का अपहरण करके जो इस लोक से उस लोक को ले जाने वाला है। ऐसे राजानम् = ईश्वर, यमम् = यमको, छे यमराज, हविषा = इस पशुलक्षणवाली हवि से , दुवस्य = प्रसन्न करो या उसकी सेवा करों [39,

उपर्युक्त मन्त्र में अपनी धारणा तथा संस्कार के अनुरूप राजा का यम स्वरूप प्रतिपादित किया है।

आचार्य यास्क ने निरूक्त के प्रथम अध्याय में मन्त्रर्थ की व्याख्या शैली के सम्बन्ध में कहा है– याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा' कि याज्ञ पुष्प है। और दैवत उसका फल अथवा दैवत पुष्प है तथा अध्यात्म उसका फल है।

प्रस्तुत प्रसब में यास्क द्वारा प्रदर्शित अतिस्तुति प्रकरण उपर्युक्त कथन के सर्वथा अनुकूल है। दैवतरूप पुष्प प्राप्ति के पश्चात यास्क ने अध्यात्मरूप फल की प्राप्ति का वर्णन किया है। जो निम्नवत है।

'सोऽग्निमेव प्रथममाह [40] आचार्य यास्क कहते है। कि अतिस्तुति पक्ष में भी सर्वप्रथम आचार्य यास्क कहते हैं कि अतिस्तुति अतिस्तुति के उदाहरण के रूप में आचार्य यास्क ने अग्नि, वरूण, इन्द्र आदित्य आदि देवताओं से सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं इनमं से प्रथम तीन उदाहरणों में कुछ ऐसे पद निहित हैं जो उन्है महाभाग्ययुक्त एक आत्मतत्व के प्रतिनिधि के रूप चित्रित करते हैं।

यास्क दैवतवादी या अध्यात्मवादी – मूलतः नैरुक्तपक्ष अधिदैवत पक्ष का प्रतिपादन करता है । उसके इस उद्देष्य को सन्देहपूर्ण दृष्टि ने नहीं देखा जा सकता इसलिए यास्क को अधिदैवत – पक्ष का पोषक ही समझना चाहिए क्योंकि यास्क नैरुक्तपक्ष के पथ पर आँख बन्द करके चलने वाले व्यक्ति नहीं है ।

यास्क ने नैरुक्त परम्परा को अक्षुण्ण रक्खा है । वहाँ उन्होंने अध्याय पक्ष के प्रति अपनी गहन आस्था का परिचय दिया है। जिससे स्पष्ट है कि यास्क एक सच्चे नैरुक्त है।

'महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा, स्तूयते, एक स्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यबानि [41] भवन्ति'' मन्त्र के द्वारा यास्क ने इसी सत्य का उद्घोष किया है कि अध्यात्म को जहाँ नैरुक्तपक्ष वृक्ष की जड या मूल बताया गया है वहीं ऐतिहासिक तथा याज्ञिक पक्ष को उस वृक्ष की शाखा और प्रषाखाओं का मध्य आधार भूत स्तम्भ नैरुक्त पक्ष को माना गया है। इस प्रकार यास्क ने अपने समय को महत्वपर्ण उपलब्धि को उपर्युक्त शब्दों में व्यक्त कर दिया है ।

आचार्य यास्क का यह साहसपूर्ण कार्य है कि उन्होंने अपने पक्ष वालों की आलोचना की परवाह न करते हुए उपर्युक्त सिद्धान्त को अत्यधिक दूरदृष्टि और सूझवूझ का परिचय देते हुए नैरुक्त क्षेत्र में प्रतिष्ठापित किया जो आज भी ऐतिहासिक शिलालेख के समान अपनी दृढता तथा औचित्य का बोध कराता है । अन्त में इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मूलतः अधिदैवत– पक्ष के समर्थक होते हुए भी यास्क अध्यात्म पक्ष को उचित सम्मान देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निरुक्त – 3/13
2. तत्रैव
3. तत्रैव
4. द्र0 निरुक्त 1/15 तथा 13/12 में निरुक्त के प्रकरण का उपसंहार करते हुए यास्क कहते है। अयं मन्त्रार्थ चिन्ताभ्यूहोऽभ्यूलहोऽपि श्रुतिपोऽपि तर्कतः। तेभ्य एवं तर्कमृषि प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमथ्यूलहम्।।
5. पूर्व नैरुक्तों ने भी अपने निघण्टुओं का प्रणयन वेदार्थ को भासन (प्रकाषन) के लिए ही किया था । उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थ समाम्नासिषुः। बिल्मं भिल्मं भासनमिति वा।
6. द्र0 1/15 अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यते ।
7. द्र0 2/1 अपिहितस्यार्थस्य परोक्षवृत्तावति परोक्षिवृतौ वा शब्दे निष्कृष्य निगृह्यवचनं निर्वचनम्।
8. निरुक्त 2 – 3
9. निरुक्त 2 – 3
10. दुर्ग निरुक्त वृत्ति पृ0 137
11. स्कन्द निरुक्त वृत्ति भा0 2 पृ0 30 – 31
12. निघण्टु – 202/4
13. कालिदास रघुवंष 4, 12 राजा पृकृतिर×जनात् ।
14. दि एटीमोलोजीज ऑफ यास्क् पृ0 57
15. निरुक्त – 13/12
16. निरुक्त 1/20
17. निरु0 2/16
18. दुर्ग निरुक्त वृत्ति, पृ0 177 – 78
19. ऋ0 10/54/2
20. महा0 95/44
21. महा0 95/44
22. गीता, 6/44, 10/22
23. निरुक्त – 2/11
24. ऋ0 8/44/3
25. ऋ0 10/85/5
26. दुर्ग निरुक्तवृत्ति पृ0 888
27. ऋ0 10/85/5
28. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति पृ0 888
29. ऋ0 10/86/13
30. दुर्ग निरुक्तवृत्ति, पृ0949
31. निरुक्त 12/9
32. निरुक्त 12/9
33. निरुक्त 12/19
34. निरुक्त 12/19
35. ऋ0 1/108/10
36. दुर्ग निरुक्त वृत्ति पृ0 972
37. दुर्ग निरुक्त वृत्ति पृ0 972
38. ऋ0 10/14/1
39. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति, पृ0 846
40. निरुक्त – 13/1
41. निरुक्त – 7/4

42. अष्टाध्यायी,ब्रह्मदत्त,जिज्ञासु,रामलालकपूरट्रस्ट सोनीपत,हरियाणा,1977ई0
43. अथर्ववेद संहिता क्षेमकरणदास त्रिवेदीकृत,दयानन्द संस्थान करोलवाग,2031 वि0स0,(नई – दिल्ली)
44. अभिज्ञानषाकुन्तलम्,कालिदास,चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी,2002 ई0
45. आचार्य सायण औरस्वामी, डॉरामप्रकाषवर्णी, परिमलपिब्लकेषन्स,27/28,2008ई0,दयानन्दकी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाऍ शक्तिनगर (दिल्ली)
46. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र,हरदत्त मिश्र,अनाकुला टीला चौखम्बा संस्कृत,1928 ई0,सीरीज वाराणसी
47. आर्षज्योति,डा0 रामनाथ वेदालंकार, श्रीघूड़मल प्रहलादकुमार आर्ष,2008 ई0 धर्मार्थन्यास वनियापाडा हिण्डौनसिटी
48. उणादिकोषः (पंचपादी),व्या0 स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिकयन्त्रालय अजमेर,2033 वि0 सं0(राजस्थान)
49. उणादिकोषः (दषपादी), सं0पं0 युधिष्ठिर मीमांसक,रा0ला0क0 ट्रस्ट,1942 ई0 सेनीपत(हरयाणा)
50. ऐतरेय – ब्राह्मण सुखदावृत्ति,अनन्तकृष्ण शास्त्री,त्रिवेन्द्रम,1931 ई0
51. ऋक्प्रातिषाख्यम् उवट,सं0 मंगलदेव शास्त्री,चौखम्बा संस्कृत सीरीज,1953 ई0,भाष्यम वाराणसी
52. ऋक्सर्वानुक्रमणी कात्यायन,सं0 डॉ0 विजयपाल विद्यावारिधि, रामलालकपूरट्रस्टवहालगढ़, 1985 ई0 सेनीपत,(हरयाणा)
53. ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य,सार्वदेषिक आर्य प्रतिनिधिसभा 1972 ई0 रामलीला – मैदान दिल्ली
54. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका,स्वामी दयानन्द,रामलाल कपूर ट्रस्ट,2010 ई0,सोनीपत (हरयाणा)
55. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका,सायण सं0 डॉ वीरेन्द्र कुमार वर्मा,चौखम्वा प्रकाषन वाराणसी 2007 ई0
56. ऋग्वेद मणिमण्डलसूक्त,स्वामी समर्यणानन्द,समर्पण शोध संस्थान साहिवावाद,2035 वि0सं0
57. काषिका – वामन जयादित्य,सं0 सोभित मिश्र,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वनारस,1952 ई0
58. गुरूकुल पत्रिका,गुरुकुल कांगडी विष्वविद्यालय हरिद्वार
59. तैत्तिरीय संहिता,आनन्दाश्रम,पूना संस्करण,2001 ई0
60. तैत्तिरीयोपनिषद,वासुदेव शर्मा पणशीकर,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1991 ई0
61. तैत्तिरीय आरण्यक,आनन्दाश्रम संस्करण,पूना,2001 ई0
62. धातुपाठ,पाणिनि,रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत हरयाणा 1977 ई0
63. नाटय षास्त्रम्,भरत मुनि,चौखम्बा प्रकाषन वाराणसी,1977 ई0
64. निघण्टु, यास्क,वैदिक यन्त्रालय,1957 ई0 अजमेर राजस्थान
65. निरुक्त,आचार्य यास्क,वैदिक यन्त्रालय अजमेर,1957 ई0
66. निरुक्त स्कन्दभाष्यम्,सं0 प्रो0 ज्ञानप्रकाष शास्त्री,परिमाण पब्लिकेषन्स 27/28,2009 ई0 शक्तिनगर दिल्ली
67. निरुक्तालोचन ,पं0 सत्यव्रत सामश्रमी,कलकत्ता
68. निरुक्त मीमांसा,पं0 शिवनारायण शास्त्री,श्रीरामेश्वर सिंह इन्डोलॉजिकल 2026 वि0स0 वुक हाउस वाराणसी
69. पाणिनीयषिक्षा,चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
70. प्राचीन भारत का इतिहास,पं0 भगवद् दत्त,लाहौर संस्करण,1940 ई0
71. बृहददेवता,आचार्य शौनक सं0 –1940 ई0,ए0 ए0 मैक्डोनल
72. महाभारत,कृष्णद्वैपायन व्यास,भण्डारकर औरियन्टल रिसर्च 1904 ई0,इन्स्टीटयूट पूना
73. महाभाष्यम,पंतजलि,हरियाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर,1975 ई0
74. मनुस्मृति–मनु, कुल्लक भट्टीय टीका,प्राणजीवन शर्मा,बम्वई,1913 ई0
75. यजुर्वेदः, स्वा0 दयानन्द भाष्य,आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर,2016 वि0 सं0
76. यजुर्वेद भाष्य विवरण,पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु,रामलाल कपूर ट्रस्ट गुरवाजार अमृतसर 1956 ई0
77. रघुवंषमहाकाव्यम्,कालिदास,चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वारणसी,1970 ई0
78. वाजसनेयी प्रातिषाख्यम्,कात्यायन,उवटभाष्य वैकंटराम शर्मा मद्रास,1934 ई0
79. वेदवाणी – मासिक पत्रिका,सं0 आचार्य सुरेन्द्र,रामलाल कपूर ट्रस्ट रेवली जिला,2010 ई0
80. सोनीपत (राजस्थान)
81. वेदान्त दर्षन,व्यासर्षि, सं0 विन्ध्येष्वरी,चौखम्बा संस्कृत सीरीज – वाराणसी,1992 ई0,प्रसाद द्विवेदी,
82. वेदों का यथार्थ स्वरूप,पं0 धर्मदेव विद्यामार्तण्ड,समर्पण शोध संस्थान राजेन्द्र नगर,52 वि0 सं0,साहिवावाद
83. वेदों की वर्णन शैलियाँ,डॉ रामनाथ वेदालंकार,श्रद्धानन्द शोधसंस्थान गु0 कागड़ी,1976 ई0
84. वैदिक कोष,पं0 हंसराज,राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,2001 ई0,जनकपुरी (दिल्ली) वैदिक वाङमय का इतिहास,पं0 भगवद्दत्त,प्रवण प्रकाशन 1/8 पंजावीवाग नई–दिल्ली 1978 ई0
85. वैदिकइतिहास निर्णय, पं0 षिवषंकर शर्मा काव्यतीर्थ,वैदिकपुस्तकालय सी0 के0 61/61,1950ई0 कर्णघण्टा वाराणसी
86. वैदिक इतिहास विमर्ष,आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री,आर्य साहित्य मण्डल लिमटेड अजमेर 1961 ई0
87. वैदिक इतिहास विमर्श,डॉ0 रघुवीर वेदालंकार,प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान बी0 266 2005 ई0 सरस्वतीविहार दिल्ली
88. वैदिक माइयोलॉजी,ए0 ए0 मैक्डोनल,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1984 ई0
89. वैदिक सिद्धान्त मीमांसा,पं0 म0 युधिष्ठिर मीमांसक,रा0 ला0 क0 ट्रस्ट सोनीपत (हरयाणा)
90. शतपथ ब्राह्मण,सायणाचार्य,'नागप्रकाषन' – (दिल्ली), 1990 ई0
91. श्रीमद्भगवदगीता,गीताप्रेस – गोरखपुर,2010 ई0
92. सामवेद संहिता,वैदिक यंन्त्रालय – अजमेर 2065 वि0सं0,(राजस्थान)
93. सत्यार्थप्रकष,स्वामीदयानन्द सरस्वती,वैदिक यन्त्रालय – अजमेर,2065 वि0स0,(राजस्थान